[2019] 1 उम. नि. प. 327

गोट्टुमुक्कला वेंकट कृष्णमराजू

बनाम

भारत संघ और अन्य

7 सितम्बर, 2018

न्यायमूर्ति ए. के. सीकरी और न्यायमूर्ति अशोक भूषण

ऋण वसूली और शोधन अक्षमता अधिनियम, 1993 (1993 का 51) – धारा 6 (2016 के अधिनियम सं. 44 द्वारा यथा-संशोधित) – ऋण वसूली अधिकरण में पीठासीन अधिकारी की पदावधि – धारा 6 के संशोधन द्वारा पीठासीन अधिकारी की सेवानिवृत्ति की आयु को 62 वर्ष से बढ़ाकर 65 वर्ष किया जाना – संशोधन से पूर्व नियुक्त किए गए ऐसे सेवारत पीठासीन अधिकारी जिन्होंने संशोधन के प्रवृत्त होने की तारीख से पूर्व 62 वर्ष की आयु प्राप्त करने तक पांच वर्ष की सेवा पूरी नहीं की है, संशोधित धारा का फायदा लेते हुए, जिसमें सेवानिवृत्ति की आयु बढ़ाकर 65 वर्ष कर दी गई है, अपनी पांच वर्ष की पदावधि पूरी करने के हकदार होंगे ।

इन याचिकाओं में याचियों को बैंकों और वित्तीय संस्थाओं को शोध्य ऋण वसूली अधिनियम, 1993 के अधीन, जिसे ऋण वसूली और शोधन अक्षमता अधिनियम, 1993 के रूप में नया नाम दिया गया है, सृजित ऋण वसूली अधिकरण के पीठासीन अधिकारियों के रूप में नियुक्त किया गया था । यह नियुक्ति उक्त अधिनियम के उपबंधों के अधीन की गई थी । अधिनियम का अध्याय 2, अधिकरण और अपील अधिकरण की स्थापना के संबंध में है । इस मामले के प्रयोजनों के लिए सुसंगत उपबंध धारा 3 से धारा 6 हैं । धारा 3 केन्द्रीय सरकार द्वारा अधिकरण की स्थापना करने के संबंध में है जो कि ऋण वसूली अधिकरण के नाम से ज्ञात है । धारा 4 अधिकरण की संरचना के बारे में है । धारा 5 पीठासीन अधिकारियों के रूप में नियुक्ति के लिए अर्हताओ के संबंध में है । नियुक्ति किए जाने पर, पीठासीन अधिकारी

की पदावधि धारा 6 में अनुबद्ध है । इस अधिनियम के विभिन्न उपबंधों में वर्ष 2016 में संशोधन किए गए हैं । इसके साथ-साथ, अधिनियम को, जो कि इससे पूर्व बैंकों और वित्तीय संस्थाओं को शोध्य ऋण वसूली अधिनियम, 1993 के रूप में ज्ञात था, वित्त अधिनियम, 2017 द्वारा एक नया नाम दिया गया है और अब यह ऋण वसूली और शोधन अक्षमता अधिनियम, 1993 के रूप में ज्ञात है । जैसा कि धारा 6 से स्पष्ट है, कोई व्यक्ति अधिकरण के पीठासीन अधिकारी के रूप में नियुक्ति के पश्चात् अपने पद-ग्रहण की तारीख से पांच वर्ष की अवधि या बासठ वर्ष की आयु प्राप्त कर लेने तक, इनमें से जो भी पूर्वतर हो, अपना पद धारण कर सकेगा । इस धारा को 2016 में नई धारा से प्रतिस्थापित कर दिया गया और नई धारा 6क भी अंतःस्थापित की गई थी । यथा-संशोधित धारा 6 के अनुसार किसी अधिकरण का पीठासीन अधिकारी अपने पद-ग्रहण की तारीख से पांच वर्ष की अवधि के लिए अपना पद धारण करेगा और वह पुनर्नियुक्ति के लिए पात्र होगा । परन्तु कोई व्यक्ति पैंसठ वर्ष की आयु प्राप्त करने के पश्चात्, अधिकरण के पीठासीन अधिकारी के रूप में पद धारण नहीं करेगा । सभी याचियों को धारा 6 के संशोधन से पूर्व नियुक्त किया गया था । इस प्रकार, उनकी नियुक्ति के समय उनकी पदावधि "पांच वर्ष या 62 वर्ष की आयु प्राप्त कर लेने तक, इनमें से जो भी पूर्वतर हो", थी । इन अधिकारियों ने पांच वर्ष की सेवा पूरी नहीं की है । तथापि, वे संशोधित धारा 6 के प्रवृत्त होने के पश्चात् 62 वर्ष की आयु पूरी कर रहे हैं/कर ली है । उपर्युक्त पृष्ठभूमि में, इन याचिकाओं में जो प्रश्न विचारार्थ उद्भूत होता है वह यह है कि क्या याची, संशोधित उपबंध का लाभ लेते हुए, जिसमें ऐसे पीठासीन अधिकारियों को 65 वर्ष की आयु प्राप्त कर लेने तक बने रहने या तब तक जब तक वे 65 वर्ष की आयु पूरी करते हैं, इनमें से जो भी पूर्वतर हो, बने रहने का लाभ दिया गया है, पांच वर्ष की पदावधि पूरी करने के हकदार हैं । इस पृष्ठभूमि में, इन याचिकाओं में जो मुद्दा उद्भूत हुआ है वह यह है कि क्या याची यथा-संशोधित धारा 6 द्वारा शासित होंगे या इस उपबंध को भविष्यलक्षी रूप से, अर्थात् तारीख 1 सितम्बर, 2016 ,से अर्थात्, ऐसी नियुक्तियों की बाबत, जो तारीख 1 सितम्बर, 2016 को या उसके पश्चात् की जाती हैं, लागू किया जाना है ।

याचियों का प्रयास यह प्रदर्शित करना है कि वे यथा-संशोधित धारा 6 द्वारा शासित होंगे और इसलिए उन्हें 65 वर्ष की आयु तक या उस समय तक जब तक वे 65 वर्ष की आयु प्राप्त कर लेने से पूर्व पांच वर्ष का कार्यकाल पूरा नहीं कर लेते हैं, बने रहने का अधिकार है । उच्चतम न्यायालय द्वारा रिट याचिका और अंतरित मामले मंजूर करते हुए,

अभिनिर्धारित – याचियों के तर्कों में बल प्रतीत होता है कि धारा 6 के संशोधित उपबंध उनके मामलों को भी लागू होंगे और इसलिए यदि उन्होंने ऋण वसूली अधिकरण के पीठासीन अधिकारियों के रूप में पांच वर्ष का कार्यकाल पूरा नहीं किया है तो वे तब तक पीठासीन अधिकारियों के रूप में कार्य पर बने रहने के हकदार हैं जब तक वे 65 वर्ष की आयु प्राप्त नहीं करते या 65 वर्ष की आयु प्राप्त करने से पूर्व पांच वर्ष की पदावधि पूरी नहीं करते । प्रथमतः, हमें उस भाषा/शब्दावली को ध्यान में रखना होगा जिसका प्रयोग विधान-मंडल द्वारा 1 सितम्बर, 2016 से नई धारा 6 अंतःस्थापित करते समय किया गया है । इस धारा को पुरानी धारा के स्थान पर रखा गया है । "प्रतिस्थापित" शब्द का अपना महत्व है । (पैरा 12)

साधारणतया, जहां कहीं भी विधान-मंडल द्वारा "प्रतिस्थापित" या "प्रतिस्थापन" शब्द का प्रयोग किया जाता है, इसका प्रभाव पुराने उपबंध का लोप करना और नए उपबंध को प्रवर्तनशील बनाना होता है । प्रतिस्थापन की प्रक्रिया में दो चरण होते हैं : पहला यह कि पुराने नियम का अस्तित्व समाप्त कर दिया जाता है और दूसरा यह कि उसके स्थान पर नए नियम को अस्तित्वशील बनाया जाता है । नियम यह है कि जब कोई पश्चात्वर्ती अधिनियम किसी पूर्ववर्ती अधिनियम का इस प्रकार संशोधन करता है जिससे कि वह पूर्ववर्ती अधिनियम में स्वयं को या अपने किसी भाग को शामिल कर ले तो इसके पश्चात् पूर्ववर्ती अधिनियम का पठन या अर्थान्वयन इस प्रकार किया जाना चाहिए मानो परिवर्तित शब्द पूर्ववर्ती अधिनियम में कलम और स्याही से लिखे गए थे और पुराने शब्दों को काट दिया गया है जिससे कि इसके पश्चात् संशोधनकारी अधिनियम के प्रतिनिर्देश करने की बिल्कुल भी आवश्यकता न हो । निस्संदेह, कतिपय स्थितियों में, न्यायालय उस तात्पर्य और

उद्देश्य को ध्यान में रखते हुए जिसे पूरा करने की ईप्सा विधान-मंडल द्वारा की गई थी, "प्रतिस्थापन" शब्द का अर्थान्वयन ऐसे "संशोधन" के रूप में कर सकता है जिसका भविष्यलक्षी प्रभाव होगा । अतः, हम यह नहीं समझते हैं कि यह एक सार्वभौम नियम है कि "प्रतिस्थापन" शब्द से आवश्यक रूप से या सदैव दो पृथक्करणीय चरण द्योतित होते हैं, अर्थात्, एक निरसन करना और दूसरा नया अधिनियमन करना, भले ही इसमें दो चरण विवक्षित होते हों । तथापि, उपर्युक्त साधारण अर्थान्वयन को तब तक प्रभावी किया जाना चाहिए जब तक कि यह न पाया जाए कि विधान-मंडल का आशय अन्यथा था । जहां तक प्रस्तुत मामले का संबंध है, जैसा कि इसमें इसके पश्चात् चर्चा की गई है, विधायी आशय संशोधित उपबंध को उन पदधारियों की बाबत भी प्रभावी करना था जो तारीख 1 सितम्बर, 2016 को सेवा में थे । अतः इसका प्रभाव यथासंशोधित धारा 6 को इस आशय के साथ रखना होगा मानो यही एकमात्र ऐसा उपबंध है जो इस अधिनियम के प्रारंभ की तारीख से विद्यमान था और पूर्ववर्ती उपबंध बिल्कुल भी नहीं था । इसका प्रभाव यह होगा कि वे सभी पदधारी, जो तारीख 1 सितम्बर, 2016 को पीठासीन अधिकारी का पद धारण किए हुए थे, इस उपबंध द्वारा शासित होंगे । जब हम मामले की परीक्षा उपर्युक्त परिप्रेक्ष्य में करते हैं तो यह प्रश्न विचारार्थ उद्भूत नहीं होता है कि यथासंशोधित धारा 6 को भूतलक्षी प्रभाव दिया जाना है अथवा नहीं । याचियों का यह निवेदन सही है कि उन व्यक्तियों को, जिन्होंने संशोधन से पूर्व पद छोड़ दिया है, इस संशोधन के अंतर्गत लाने की ईप्सा नहीं की गई है । यदि यह उपबंध भूतलक्षी होता तो इससे उन व्यक्तियों को भी इसका लाभ मिल जाता । किसी भी याची या किसी अन्य व्यक्ति द्वारा ऐसा कोई पक्षकथन नहीं किया गया है, केवल उन पदधारियों को, जो संशोधन की तारीख को सेवारत हैं, इसके अंतर्गत लाने की ईप्सा की गई है । (पैरा 14, 15 और 16)

संसद् ने संशोधित उपबंध को असंशोधित उपबंध के स्थान पर रखने के आशय से उपर्युक्त संशोधन करते समय यह वांछा की थी कि इस उपबंध का फायदा उन व्यक्तियों को भी प्रदान किया जाए जो उस तारीख को, जब यह संशोधन प्रवर्तनीय हुआ, पीठासीन अधिकारियों के

रूप में सेवा कर रहे हैं । यही न्यायसंगत, युक्तियुक्त और विवेकपूर्ण परिणाम प्रतीत होता है । (पैरा 21)

यह दलील असफल होती है कि यथा-संशोधित धारा 6 कोई अधिकार सृजित नहीं करती । यदि ऐसे निर्वचन को स्वीकार किया जाता है तो उन व्यक्तियों को भी, जिन्हें तारीख 1 सितम्बर, 2016 के पश्चात् पीठासीन अधिकारियों के रूप में नियुक्त किया गया है, 65 वर्ष की आयु तक सेवा में बने रहने के अधिकार से इनकार किया जा सकता है । परिणामस्वरूप, उन याचियों को, जिनके पक्ष में अंतरिम रोक लगा दी गई है, सेवा में बने रहने के लिए अनुज्ञात किया जाएगा । 2019 की रिट याचिका (सिविल) सं. 732 में के याची को सेवा की निरंतरता और बीच की अवधि के वेतन सहित तत्काल सेवा में वापस ले लिया जाएगा । (पैरा 23 और 24)

निर्दिष्ट निर्णय

		पैरा
[2011]	(2011) 7 एस. सी. सी. 639 : **मध्य प्रदेश राज्य** बनाम **नर्मदा बचाओ आंदोलन और एक अन्य** ;	9
[2007]	(2007) 7 एस. सी. सी. 171 : **सी. गुप्ता** बनाम **ग्लैक्सो-स्मिथक्लाइन फार्मास्युटिकल्स लिमिटेड** ;	11, 23
[2005]	(2005) 7 एस. सी. सी. 396 : **भारत सरकार और अन्य** बनाम **इंडियन टोबाको एसोसिएशन** ;	12
[2004]	(2004) 8 एस. सी. सी. 1 : **ज़िले सिंह** बनाम **हरियाणा राज्य और अन्य** ;	13
[1987]	[1987] 2 उम. नि. प. 855 = (1987) 1 एस. सी. सी. 424 : **भारतीय रिज़र्व बैंक** बनाम **पियरलैस जनरल फाइनेंस एंड इन्वेस्टमेंट कंपनी लिमिटेड और अन्य** ;	8, 20

[1975] (1975) 1 एस. सी. सी. 192 :
बाउचर पियरे आन्द्रे बनाम **अधीक्षक, केन्द्रीय कारागार, तिहाड़, नई दिल्ली और एक अन्य** । 9, 17

आरंभिक (सिविल) अधिकारिता : 2018 की रिट याचिका (सिविल) सं. 732. [इसके साथ 2017 के अंतरित मामला (सिविल) सं. 301, 303, 304, 305 और 306 की भी सुनवाई की गई]

भारत के संविधान के अनुच्छेद 32 के अधीन रिट याचिका ।

उपस्थित होने वाले पक्षकारों की ओर से सर्वश्री विक्रमजीत बनर्जी, अपर महासालिसिटर, अशोक कुमार पंडा, आर. बसंत, ज्येष्ठ अधिवक्ता, रवीन्द्र कुमार, एम. ए. चिन्नास्वामी, के. एथीराज, (सुश्री) सी. रूबावती, वी. सेंथिल कुमार, संतोष कृष्णन्, चन्द्र भूषण प्रसाद, तेजस्वी कुमार प्रधान, एम. पैकारे, अनिरुद्ध पुरूषोतम, (सुश्री) शोभा गुप्ता, नचिकेता जोशी, (सुश्री) स्वरूपमा चतुर्वेदी, (सुश्री) दिशा राय, श्रीमती अनिल कटियार और बी. वी. बलराम दास

न्यायालय का निर्णय न्यायमूर्ति ए. के. सीकरी ने दिया ।

न्या. सीकरी – इन याचिकाओं में याचियों को बैंकों और वित्तीय संस्थाओं को शोध्य ऋण वसूली अधिनियम, 1993 के अधीन, जिसे ऋण वसूली और शोधन अक्षमता अधिनियम, 1993 (जिसे इसमें इसके पश्चात् "अधिनियम" कहा गया है) के रूप में नया नाम दिया गया है, सृजित ऋण वसूली अधिकरण के पीठासीन अधिकारियों के रूप में नियुक्त किया गया था । यह नियुक्ति उक्त अधिनियम के उपबंधों के अधीन की गई थी । अधिनियम का अध्याय 2, अधिकरण और अपील

अधिकरण की स्थापना के संबंध में है । हमारे प्रयोजनों के लिए सुसंगत उपबंध धारा 3 से धारा 6 हैं । धारा 3 केन्द्रीय सरकार द्वारा अधिकरण की स्थापना करने के संबंध में है जो कि ऋण वसूली अधिकरण के नाम से ज्ञात है । धारा 4 अधिकरण की संरचना के बारे में है । धारा 5 पीठासीन अधिकारियों के रूप में नियुक्ति के लिए अर्हताओं के संबंध में है । नियुक्ति किए जाने पर, पीठासीन अधिकारी की पदावधि धारा 6 में अनुबद्ध है । इस अधिनियम के विभिन्न उपबंधों में वर्ष 2016 में संशोधन किए गए हैं । इसके साथ-साथ, अधिनियम को, जो कि इससे पूर्व बैंकों और वित्तीय संस्थाओं को शोध्य ऋण वसूली अधिनियम, 1993 के रूप में ज्ञात था, वित्त अधिनियम, 2017 द्वारा एक नया नाम दिया गया है और अब यह ऋण वसूली और शोधन अक्षमता अधिनियम, 1993 के रूप में ज्ञात है । असंशोधित धारा 3 से धारा 6 निम्नलिखित रूप में थीं :–

> "3. **अधिकरण की स्थापना** – (1) केन्द्रीय सरकार इस अधिनियम द्वारा या इसके अधीन ऋण वसूली अधिकरण को प्रदत्त अधिकारिता, शक्तियों और प्राधिकार का प्रयोग करने के लिए अधिसूचना द्वारा एक या अधिक अधिकरण स्थापित करेगी, जिसका नाम ऋण वसूली अधिकरण होगा ।
>
> (2) केन्द्रीय सरकार, उपधारा (1) में विनिर्दिष्ट अधिसूचना में ऐसे क्षेत्र को भी विनिर्दिष्ट करेगी जिनके भीतर अधिकरण अपने समक्ष फाइल किए गए आवेदन को ग्रहण करने और उनका विनिश्चय करने के लिए अधिकारिता का प्रयोग कर सकेगा ।
>
> 4. **अधिकरण की संरचना** – (1) अधिकरण केवल एक व्यक्ति से (जिसे इसमें इसके पश्चात् पीठासीन अधिकारी कहा गया है) मिलकर बनेगा जो केन्द्रीय सरकार द्वारा नियुक्त किया जाएगा ।
>
> (2) उपधारा (1) में किसी बात के होते हुए भी, केन्द्रीय सरकार एक अधिकरण के पीठासीन अधिकारी को अन्य अधिकरण के पीठासीन अधिकारी के कृत्य का निर्वहन करने के लिए भी प्राधिकृत कर सकेगी ।

5. **पीठासीन अधिकारी के रूप में नियुक्ति के लिए अर्हताएं** – कोई व्यक्ति किसी अधिकरण के पीठासीन अधिकारी के रूप में नियुक्ति के लिए तभी अर्हित होगा जब वह जिला न्यायाधीश है या रहा है या जिला न्यायाधीश होने के लिए अर्हित है ।

6. **पदावधि** – अधिकरण का पीठासीन अधिकारी अपने पद ग्रहण की तारीख से पांच वर्ष की अवधि या बासठ वर्ष की आयु प्राप्त कर लेने तक, इनमें से जो भी पूर्वतर हो, अपना पद धारण करेगा ।"

2. जैसा कि धारा 6 से स्पष्ट है, कोई व्यक्ति अधिकरण के पीठासीन अधिकारी के रूप में नियुक्ति के पश्चात् अपने पद-ग्रहण की तारीख से पांच वर्ष की अवधि या बासठ वर्ष की आयु प्राप्त कर लेने तक, इनमें से जो भी पूर्वतर हो, अपना पद धारण कर सकेगा । इस धारा को 2016 के अधिनियम सं. 44 द्वारा तारीख 1 सितम्बर, 2016 से प्रतिस्थापित कर दिया गया है और संशोधित उपबंध निम्नलिखित रूप में है :–

"6. **पीठासीन अधिकारी की पदावधि** – किसी अधिकरण का पीठासीन अधिकारी अपने पद-ग्रहण की तारीख से पांच वर्ष की अवधि के लिए अपना पद धारण करेगा और वह पुनर्नियुक्ति के लिए पात्र होगा :

परन्तु कोई व्यक्ति पैंसठ वर्ष की आयु प्राप्त करने के पश्चात्, अधिकरण के पीठासीन अधिकारी के रूप में पद धारण नहीं करेगा ।"

3. इसके साथ-साथ, धारा 6क के रूप में एक अन्य उपबंध भी अंतःस्थापित किया गया है, जो कि निम्नलिखित रूप में है :–

"6क. **पीठासीन अधिकारी की अर्हताएं, सेवा के निबंधन और शर्तें** – इस अधिनियम में किसी बात के होते हुए भी, वित्त अधिनियम, 2017 के अध्याय 6 के भाग 14 के प्रारंभ के पश्चात् नियुक्त किए गए अधिकरण के पीठासीन अधिकारी की अर्हताएं, नियुक्ति, पदावधि, वेतन और भत्ते, त्यागपत्र, हटाया जाना और

सेवा के अन्य निबंधन और शर्तें उस अधिनियम की धारा 184 के उपबंधों द्वारा शासित होंगी :

परन्तु वित्त अधिनियम, 2017 के अध्याय 6 के भाग 14 के प्रारंभ के पूर्व नियुक्त किया गया पीठासीन अधिकारी इस अधिनियम और उसके अधीन बनाए गए नियमों के उपबंधों द्वारा इस प्रकार शासित बना रहेगा मानो वित्त अधिनियम, 2017 की धारा 184 के उपबंध प्रवृत्त नहीं हुए थे ।"

कुछ अन्य उपबंधों को भी संशोधित किया गया है, किन्तु वे इन मामलों के प्रयोजनों के लिए सुसंगत नहीं हैं ।

4. सभी याचियों को धारा 6 के संशोधन से पूर्व नियुक्त किया गया था । इस प्रकार, उनकी नियुक्ति के समय उनकी पदावधि "पांच वर्ष या 62 वर्ष की आयु प्राप्त कर लेने तक, इनमें से जो भी पूर्वतर हो", थी । इन अधिकारियों ने पांच वर्ष की सेवा पूरी नहीं की है । तथापि, वे संशोधित धारा 6 के प्रवृत्त होने के पश्चात् 62 वर्ष की आयु पूरी कर रहे हैं/कर ली है । उपर्युक्त पृष्ठभूमि में, इन याचिकाओं में जो प्रश्न विचारार्थ उद्भूत होता है वह यह है कि क्या याची, संशोधित उपबंध का लाभ लेते हुए, जिसमें ऐसे पीठासीन अधिकारियों को 65 वर्ष की आयु प्राप्त कर लेने तक बने रहने या तब तक जब तक वे 65 वर्ष की आयु पूरी करते हैं, इनमें से जो भी पूर्वतर हो, बने रहने का लाभ दिया गया है, पांच वर्ष की पदावधि पूरी करने के हकदार हैं ।

5. हम, सुविधा की दृष्टि से, 2017 के अंतरण मामला (सिविल) सं. 301 की बाबत विशिष्टियां दे सकते हैं और इसके साथ-साथ अन्य मामलों में हुई प्रगति का भी उल्लेख कर सकते हैं ।

तारीख	घटना
27.12.1954	याची की जन्म-तारीख । याची की आयु 26 दिसम्बर, 2016 को 62 वर्ष हुई और वह 26 दिसम्बर, 2019 को 65 वर्ष का हो जाएगा ।
27.08.1993	बैंकों और वित्तीय संस्थाओं को शोध्य ऋण वसूली अधिनियम, 1993 का अधिनियमन । अधिनियम

	की धारा 6 में यह विहित था कि ऋण वसूली अधिकरण का पीठासीन अधिकारी अपने पद ग्रहण की तारीख से पांच वर्ष के लिए या 62 वर्ष की आयु तक, इनमें से जो भी पूर्वतर हो, पद धारण करेगा ।
15.12.2014	याची को ऋण वसूली अधिकरण, लखनऊ के पीठासीन अधिकारी के रूप में नियुक्त करने संबंधी अधिसूचना ।
6.01.2015	याची ने ऋण वसूली अधिकरण, लखनऊ के पीठासीन अधिकारी के रूप में पद ग्रहण किया ।
12.08.2016	बैंकों और वित्तीय संस्थाओं को शोध्य ऋण वसूली अधिनियम, 1993 का संशोधन । 1993 के अधिनियम की धारा 6 प्रतिस्थापित की गई थी । संशोधित धारा 6 में यह अनुध्यात है कि पीठासीन अधिकारी अपने पद-ग्रहण की तारीख से पांच वर्ष के लिए पद धारण करेगा । परन्तुक में यह स्पष्ट किया गया है कि पीठासीन अधिकारी 65 वर्ष की आयु के पश्चात् बना नहीं रहेगा ।
1.09.2016	2016 का संशोधन, केन्द्रीय सरकार द्वारा इस प्रकार अधिसूचित किए जाने पर प्रभावी होता है ।
29.09.2016	भारत सरकार ने ऋण वसूली अधिकरण, लखनऊ और अन्य ऋण वसूली अधिकरणों के पीठासीन अधिकारी के लिए प्रत्याशित रिक्तियों को विज्ञापित किया ।
6.10.2016	केन्द्रीय प्रशासनिक अधिकरण, नई दिल्ली ने अंतरिम आदेश द्वारा, ऋण वसूली अधिकरण, गुवाहाटी के पीठासीन अधिकारी (वी. के. गर्ग) को उसके द्वारा फाइल किए गए मूल आवेदन में, सेवानिवृत्ति की वृधित आयु को ध्यान में रखते

	हुए, निर्मुक्त करने पर रोक लगा दी ।
7.12.2016	इलाहाबाद उच्च न्यायालय की लखनऊ पीठ ने अंतरिम आदेश द्वारा, याची को, उसके द्वारा फाइल की गई रिट याचिका में, सेवानिवृत्ति की वृधित आयु को ध्यान में रखते हुए निर्मुक्त करने पर रोक लगा दी ।
9.12.2016	मुम्बई उच्च न्यायालय ने वसंत नारायण लोथे पटेल, पीठासीन अधिकारी, ऋण वसूली अधिकरण III मुम्बई द्वारा फाइल की गई रिट याचिका (एल.) सं. 3299/2016 को खारिज कर दिया, जिसके द्वारा उक्त अधिकारी ने उसके कार्यकाल को 65 वर्ष की आयु या पांच वर्ष की सेवा पूरी करने तक विस्तारित करने के लिए संशोधन धारा 6 को लागू करने की ईप्सा की थी ।
26.12.2016	याची ने 62 वर्ष की आयु प्राप्त कर ली ।
2.02.2017	मद्रास उच्च न्यायालय ने अंतरिम आदेश द्वारा, कोयम्बटूर के ऋण वसूली अधिकरण के जे. वी. राज को उसके द्वारा फाइल की गई रिट याचिका में, सेवानिवृत्ति की वृधित आयु को ध्यान में रखते हुए निर्मुक्त करने पर रोक लगा दी ।
9.02.2017	झारखंड उच्च न्यायालय ने अंतरिम आदेश द्वारा, ऋण वसूली अधिकरण के बी. एन. दास को, उसके द्वारा फाइल की गई रिट याचिका में, सेवानिवृत्ति की वृधित आयु को ध्यान में रखते हुए निर्मुक्त करने पर रोक लगा दी ।
28.02.2017	मद्रास उच्च न्यायालय ने अंतरिम आदेश द्वारा, चेन्नई के ऋण वसूली अधिकरण-II के पीठासीन अधिकारी आर रवीन्द्र बोस को सेवानिवृत्ति की वृधित आयु को ध्यान में रखते हुए निर्मुक्त करने

	पर रोक लगा दी ।
4.10.2017	भारत संघ ने केन्द्रीय प्रशासनिक अधिकरण, दिल्ली और इलाहाबाद, मद्रास और झारखंड उच्च न्यायालय के समक्ष लंबित ऊपर उल्लिखित याचिकाओं के रूप में पांच अंतरण याचिकाएं फाइल कीं । छठी अंतरण याचिका, 2016 की रिट याचिका (एल) सं. 2358 बाबत फाइल की गई थी, जो कि मोहम्मद ज़फर इमाम द्वारा मुम्बई उच्च न्यायालय के समक्ष फाइल की गई थी । इस अधिकारी ने पहले ही 17 सितम्बर, 2016 को पद छोड़ दिया था । इस न्यायालय ने तारीख 4 अक्तूबर, 2017 को ऊपर उल्लिखित अंतरण याचिकाओं में, जो कि अंतरण याचिका (सिविल) सं. 1315-1320/2017 हैं, सूचना जारी की और संबंधित न्यायालयों के समक्ष कार्यवाहियों पर रोक लगा दी ।
14.11.2017	इस न्यायालय ने सभी छह अंतरण याचिकाएं [अंतरण याचिका (सिविल) सं. 1315-1329/2017] मंजूर कर लीं और मोहम्मद जफर इमाम को मुम्बई के ऋण वसूली अधिकरण-II के पीठासीन अधिकारी के रूप में बहाल करते हुए अंतरिम आदेश पारित किया ।
26.12.2019	याची 65 वर्ष की आयु पूरी कर लेगा ।
6.01.2020	याची, इस तारीख को पांच वर्ष की पदावधि पूरी कर लेगा ।

6. असंशोधित धारा 6 के उपबंधों के अनुसार, याची केवल 26 दिसम्बर, 2016 तक बना रह सकता था क्योंकि उसने उस तारीख को 62 वर्ष की आयु पूरी कर ली थी यद्यपि उसने पीठासीन अधिकारी के रूप में पांच वर्ष की पदावधि पूरी नहीं की थी । यदि संशोधित धारा 6

लागू होती है तो वह 26 दिसम्बर, 2019 तक बने रहने का हकदार होगा, जिस तारीख को वह 65 वर्ष की आयु प्राप्त करेगा । इन सभी मामलों में यही तथ्यात्मक स्थिति है, हालांकि वे तारीखें भिन्न-भिन्न हैं जब वे पांच वर्ष की पदावधि पूरी करेंगे या 65 वर्ष की आयु प्राप्त करेंगे ।

7. इस पृष्ठभूमि में, इन याचिकाओं में जो मुद्दा उद्भूत हुआ है वह यह है कि क्या याची यथा-संशोधित धारा 6 द्वारा शासित होंगे या इस उपबंध को भविष्यलक्षी रूप से, अर्थात् तारीख 1 सितम्बर, 2016 से अर्थात्, ऐसी नियुक्तियों की बाबत, जो तारीख 1 सितम्बर, 2016 को या उसके पश्चात् की जाती हैं, लागू किया जाना है ।

8. याचियों का प्रयास यह प्रदर्शित करना है कि वे यथा-संशोधित धारा 6 द्वारा शासित होंगे और इसलिए उन्हें 65 वर्ष की आयु तक या उस समय तक जब तक वे 65 वर्ष की आयु प्राप्त कर लेने से पूर्व पांच वर्ष का कार्यकाल पूरा नहीं कर लेते हैं, बने रहने का अधिकार है । याचियों द्वारा अपने उपर्युक्त अभिवाक् के समर्थन में किए गए पैरा-वार निवेदन निम्नलिखित रूप में हैं :–

(क) संशोधन अधिनियम द्वारा नई धारा 6 को पुरानी धारा 6 के स्थान पर 'प्रतिस्थापित' कर दिया गया है । विधान-मंडल ने एक निश्चित प्रयोजन के साथ 'प्रतिस्थापित' अभिव्यक्ति का प्रयोग किया है, अर्थात् इस उपबंध को उन पीठासीन अधिकारियों को भी लागू करना है, जो तारीख 1 सितम्बर, 2016 को पद धारण किए हुए थे जब कि संशोधन को प्रवर्तन में लाया गया था । यह तर्क दिया गया था कि 'प्रतिस्थापित' अभिव्यक्ति का यह अभिप्राय होगा कि पुरानी धारा 6 विलोपित हो गई है ।

(ख) संशोधन करने के पीछे प्रयोजन, पीठासीन अधिकारियों की आयु में वृद्धि करके लंबित मामलों के भार को कम करना था । इस बात का स्पष्ट रूप से उल्लेख लोक सभा की संयुक्त समिति की रिपोर्ट तथा संशोधन संबंधी उद्देश्यों और कारणों के कथन में भी किया गया है ।

(ग) इस उपबंध का सप्रयोजन निर्वचन किए जाने की आवश्यकता है और संशोधन के पीछे जो प्रयोजन और उद्देश्य था, उसे ध्यान में रखते हुए, उक्त प्रयोजन की केवल तभी पूर्ति होगी यदि यह सेवारत पदधारियों को तथा लागू किए जाने की तारीख को लागू किया जाता है । भारतीय रिज़र्व बैंक **बनाम** पियरलैस जनरल फाइनेंस एंड इन्वेस्टमेंट कंपनी लिमिटेड और अन्य [1987] 2 उम. नि. प. 855 = (1987) 1 एस. सी. सी. 424. वाले मामले में इस न्यायालय के निर्णय के प्रतिनिर्देश किया जाता है ।

9. उसी दृष्टि से यह तर्क दिया गया है कि इस उपबंध का ऐसा निर्वचन करने के परिणामस्वरूप कि वह पदधारी को लागू नहीं होता है, संशोधन को एक प्रतिकूल उद्देश्य समनुदेशित हो जाएगा जो कि पूर्णतः विसंगत होगा । इस प्रतिपादना के लिए, **मध्य प्रदेश राज्य** बनाम **नर्मदा बचाओ आंदोलन और एक अन्य**[1] वाले निर्णय का अवलंब लिया गया है । **बाउचर पियरे आन्द्रे** बनाम **अधीक्षक, केन्द्रीय कारागार, तिहाड़, नई दिल्ली और एक अन्य**[2] वाले निर्णय का भी अवलंब लिया गया है ।

10. अधिनियम की धारा 6 के उपबंधों की तुलना धारा 6क के उपबंधों से करते हुए यह दलील दी गई है कि धारा 6क के परन्तुक द्वारा स्पष्ट रूप से इस आशय का उपबंध किया गया है कि वित्त अधिनियम, 2017 के प्रारंभ से पूर्व नियुक्त किया गया पीठासीन अधिकारी वित्त अधिनियम, 2017 की धारा 184 के उपबंधों द्वारा इस प्रकार शासित बना रहेगा मानो उक्त उपबंध प्रवृत्त नहीं हुआ था । यह दलील दी गई थी कि धारा 6 में ऐसा कोई परन्तुक नहीं जोड़ा गया है जो विधान-मंडल के आशय को अत्यंत स्पष्ट करता हो, अर्थात्, ऐसे पीठासीन अधिकारी, जो संशोधन की तारीख को कार्यरत थे, नई अंतःस्थापित धारा 6 द्वारा शासित होंगे ।

11. प्रत्यर्थी - भारत संघ की ओर से उपस्थित होने वाले विद्वान अपर महासालिसिटर श्री बनर्जी ने याचियों द्वारा दिए गए उपर्युक्त तर्कों

---

[1] (2011) 7 एस. सी. सी. 639.

[2] (1975) 1 एस. सी. सी. 192.

का निम्नलिखित दलीलों द्वारा खंडन किया :–

धारा 6 में किए गए संशोधन के आधार पर 65 वर्ष की आयु तक पद धारण करने का कोई अधिकार प्रोद्भूत नहीं हुआ है । यह दलील दी गई थी कि असंशोधित धारा 6 में यह उपबंध था कि पीठासीन अधिकारी पांच वर्ष की पदावधि या 62 वर्ष की आयु प्राप्त करने तक, इनमें से जो भी पूर्वतर हो, पद धारण करेगा । दूसरी ओर, संशोधित उपबंध में यह नहीं कहा गया है कि पदावधि पांच वर्ष या तब तक होगी जब पीठासीन अधिकारी 65 वर्ष की आयु प्राप्त कर लेता है । दूसरी ओर, 65 वर्ष का यह उपबंध धारा 6 के परन्तुक में किया गया था, जो कि नकारात्मक निबंधनों में प्रारूपित था क्योंकि उसमें यह अनुबंध किया गया है कि कोई भी व्यक्ति 65 वर्ष की आयु प्राप्त करने के पश्चात् पद धारण नहीं करेगा । इस प्रकार, ऐसे परन्तुक द्वारा किसी व्यक्ति के पक्ष में कोई अधिकार प्रोद्भूत नहीं हुआ है । यह भी दलील दी गई थी कि जब तक विधान-मंडल द्वारा किसी उपबंध को विनिर्दिष्ट रूप से भूतलक्षी प्रभाव न दिया गया हो तब तक वह भविष्यलक्षी रूप से प्रवृत्त होता है । अतः, धारा 6 के पीछे आशय इसे उन नियुक्तियों की बाबत लागू करना था जो 1 सितम्बर, 2016 को या उसके पश्चात् की जाएंगी, जब यह उपबंध अंतःस्थापित किया गया था और उस तारीख से जिसको यह विनिर्दिष्ट रूप से प्रभावी किया गया था । यह भी दलील दी गई थी कि इसका प्रयोजन नए पीठासीन अधिकारियों की नियुक्ति करके युवाओं को आगे लाना न कि विद्यमान पीठासीन अधिकारियों को फायदा देना था । विद्वान अपर महासालीसिटर ने **सी. गुप्ता** बनाम **ग्लैक्सो-स्मिथक्लाइन फार्मास्युटिकल्स लिमिटेड**[1] वाले मामले में इस न्यायालय के निर्णय का और विशेष रूप से उस निर्णय के निम्नलिखित प्रभाग का अवलंब लिया :–

> "21. प्रस्तुत मामले में, हम यह निष्कर्ष निकालते हैं कि संशोधन की प्रकृति का अवधारण करने के लिए, प्रश्न यह है कि क्या इससे व्यष्टिक कर्मकारों के विधिक अधिकारों पर इस संदर्भ में

---

[1] (2007) 7 एस. सी. सी. 171.

प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है कि यदि वे परिभाषा के अंतर्गत आते हैं तो वे अधिनियम द्वारा प्रदत्त अनेक फायदों का दावा करने के हकदार होंगे । संशोधन भी ऐसा होना चाहिए जो उनके सारवान् अधिकारों का उल्लेख करेगा । जब तक इस आशय का कोई स्पष्ट उपबंध नहीं है कि वह भूतलक्षी रूप से है या आवश्यक विवक्षा या आशय द्वारा ऐसी भूतलक्षिता की विवक्षा की जा सकती है तब तक इसे अवश्य ही भविष्यलक्षी माना जाना चाहिए । हम संशोधनकारी अधिनियम में या स्वयं संशोधन में ऐसा कोई स्पष्ट उपबंध या आवश्यक विवक्षा या आशय द्वारा ऐसी कोई बात नहीं पाते हैं । इस संशोधन को ऐसा संशोधन नहीं कहा जा सकता है जिससे प्रक्रिया पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता हो । जहां तक इस बात का संबंध है कि संशोधन द्वारा "कर्मकार" पद की परिभाषा की परिधि में सारवान् रूप से परिवर्तन किए गए हैं, इसे मात्र घोषणात्मक या स्पष्टीकारक नहीं कहा जा सकता है । इस संबंध में हम यह पाते हैं कि परिभाषा में प्रथम बार ऐसे व्यक्तियों का पूर्णतः नया प्रवर्ग पुरःस्थापित किया गया है जो "प्रचालन" कार्य कर रहे हैं और "कुशल" और "अकुशल" शब्दों को "शारीरिक" शब्द से अलग रखकर उनका स्वतंत्र प्रवर्ग बनाया गया है । यह दृष्टव्य है कि औद्योगिक विवाद (संशोधन) अधिनियम, 1984 संसद् द्वारा 31 अगस्त, 1982 को अधिनियमित किया गया था । तथापि, स्वयं संशोधन को तत्काल प्रवृत्त नहीं किया गया था और संशोधनकारी अधिनियम की धारा 1 की उपधारा (1) में यह उपबंध किया गया था कि यह ऐसी तारीख को प्रवृत्त होगा जो केन्द्रीय सरकार, राजपत्र में अधिसूचना द्वारा नियत करे । अंततोगत्वा, उक्त संशोधन को अधिसूचना द्वारा तारीख 21 अगस्त, 1984 को प्रवृत्त किया गया था । यद्यपि, इस न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया है कि संशोधन भविष्यलक्षी होगा यदि उसके बारे में यह समझा जाता है कि वह किसी विशिष्ट दिवस को प्रवृत्त हुआ है, तथापि, संशोधनकारी अधिनियम में इस आशय के उपबंध का समरूप प्रभाव होगा कि वह संशोधन भविष्य में प्रवर्तनशील होगा ।

22. अतः, ऊपर उल्लिखित कसौटियों को लागू करने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि यथासंशोधित कर्मकार की परिभाषा के बारे में यह अवश्य ही उपधारणा की जानी चाहिए कि वह भविष्यलक्षी है ।"

12. हमने दोनों पक्षों के पक्षकारों की ओर से काउन्सेलों द्वारा दी गई दलीलों पर सम्यक् रूप से विचार किया है और सुसंगत सामग्री का परिशीलन भी किया है । हमें याचियों के तर्कों में बल प्रतीत होता है कि धारा 6 के संशोधित उपबंध उनके मामलों को भी लागू होंगे और इसलिए यदि उन्होंने ऋण वसूली अधिकरण के पीठासीन अधिकारियों के रूप में पांच वर्ष का कार्यकाल पूरी नहीं किया है तो वे तब तक पीठासीन अधिकारियों के रूप में कार्य पर बने रहने के हकदार हैं जब तक वे 65 वर्ष की आयु प्राप्त नहीं करते या 65 वर्ष की आयु प्राप्त करने से पूर्व पांच वर्ष की पदावधि पूरी नहीं करते । प्रथमतः, हमें उस भाषा/शब्दावली को ध्यान में रखना होगा जिसका प्रयोग विधान-मंडल द्वारा 1 सितम्बर, 2016 से नई धारा 6 अंतःस्थापित करते समय किया गया है । इस धारा को पुरानी धारा के स्थान पर रखा गया है । "प्रतिस्थापित" शब्द का अपना महत्व है । **भारत सरकार और अन्य** बनाम **इंडियन टोबाको एसोसिएशन**[1] वाले मामले में इस न्यायालय ने 'प्रतिस्थापित' शब्द के शब्दकोषीय अर्थ का उल्लेख किया है, जैसा कि उक्त निर्णय के पैरा 15 से दृष्टव्य है :–

"15. "प्रतिस्थापित" शब्द से साधारण रूप से "एक के स्थान पर दूसरे को रखना" या "बदलना" अभिप्रेत है । ब्लैक कृत लॉ डिक्शनरी के पांचवें संस्करण के पृष्ठ 1281 पर "प्रतिस्थापित" शब्द को इस प्रकार परिभाषित किया गया है कि उससे "किसी अन्य व्यक्ति या वस्तु के स्थान पर रखना" या "अदला-बदली करना" अभिप्रेत है । कालिन्स इंग्लिश डिक्शनरी में "प्रतिस्थापित" शब्द को इस प्रकार परिभाषित किया गया है कि उससे "किसी अन्य व्यक्ति या वस्तु के स्थान पर सेवा करना या सेवा कराना",

---

[1] (2005) 7 एस. सी. सी. 396.

"(किसी अणु में एक परमाणु या समूह के किसी अन्य परमाणु या समूह से) बदलना" या "कोई ऐसा व्यक्ति या ऐसी वस्तु, जो किसी अन्य के स्थान पर सेवा करती है जैसे कि किसी खेल में कोई खिलाड़ी जो किसी क्षतिग्रस्त साथी का स्थान लेता है ।"

13. इस अभिव्यक्ति का निर्वचन न्यायालयों द्वारा **ज़िले सिंह** बनाम **हरियाणा राज्य और अन्य**[1] वाले मामले में किया गया है और उसमें प्रतिस्थापित उपबंध के तात्पर्य और प्रभाव पर निम्नलिखित रीति में विचार-विमर्श किया गया था :–

"23. द्वितीय संशोधन अधिनियम की धारा 2 के पाठ में "पश्चात्" शब्द के स्थान पर "तक" शब्द प्रतिस्थापित करने के लिए उपबंध किया गया है । उसमें प्रयुक्त "प्रतिस्थापित किया जाएगा" अभिव्यक्ति का अर्थ और प्रभाव क्या है ?

24. एक पाठ को दूसरे पूर्व-विद्यमान पाठ के स्थान पर रखना विधान प्रारूपण में प्रयोग में लाई जाने वाली ज्ञात और सुमान्य पद्धति है । "प्रतिस्थापन" को किसी विद्यमान उपबंध के "अधिक्रमण" या मात्र निरसन से प्रभेदित करना होगा ।"

14. साधारणतया, जहां कहीं भी विधान-मंडल द्वारा "प्रतिस्थापित" या "प्रतिस्थापन" शब्द का प्रयोग किया जाता है, इसका प्रभाव पुराने उपबंध का लोप करना और नए उपबंध को प्रवर्तनशील बनाना होता है । प्रतिस्थापन की प्रक्रिया में दो चरण होते हैं: पहला यह कि पुराने नियम का अस्तित्व समाप्त कर दिया जाता है और दूसरा यह कि उसके स्थान पर नए नियम को अस्तित्वशील बनाया जाता है । नियम यह है कि जब कोई पश्चात्वर्ती अधिनियम किसी पूर्ववर्ती अधिनियम का इस प्रकार संशोधन करता है जिससे कि वह पूर्ववर्ती अधिनियम में स्वयं को या अपने किसी भाग को शामिल कर ले तो इसके पश्चात् पूर्ववर्ती अधिनियम का पठन या अर्थान्वयन इस प्रकार किया जाना चाहिए मानो परिवर्तित शब्द पूर्ववर्ती अधिनियम में कलम और स्याही से लिखे गए थे और पुराने शब्दों को काट दिया गया है जिससे कि इसके पश्चात्

---

[1] (2004) 8 एस. सी. सी. 1.

संशोधनकारी अधिनियम के प्रतिनिर्देश करने की बिल्कुल भी आवश्यकता न हो । निस्संदेह, कतिपय स्थितियों में, न्यायालय उस तात्पर्य और उद्देश्य को ध्यान में रखते हुए जिसे पूरा करने की ईप्सा विधान-मंडल द्वारा की गई थी, "प्रतिस्थापन" शब्द का अर्थान्वयन ऐसे "संशोधन" के रूप में कर सकता है जिसका भविष्यलक्षी प्रभाव होगा । अतः, हम यह नहीं समझते हैं कि यह एक सार्वभौम नियम है कि "प्रतिस्थापन" शब्द से आवश्यक रूप से या सदैव दो पृथक्करणीय चरण द्योतित होते हैं, अर्थात्, एक निरसन करना और दूसरा नया अधिनियमन करना, भले ही इसमें दो चरण विवक्षित होते हों । तथापि, उपर्युक्त साधारण अर्थान्वयन को तब तक प्रभावी किया जाना चाहिए जब तक कि यह न पाया जाए कि विधान-मंडल का आशय अन्यथा था । जहां तक प्रस्तुत मामले का संबंध है, जैसा कि इसमें इसके पश्चात् चर्चा की गई है, विधायी आशय संशोधित उपबंध को उन पदधारियों की बाबत भी प्रभावी करना था जो तारीख 1 सितम्बर, 2016 को सेवा में थे ।

15. अतः इसका प्रभाव यथासंशोधित धारा 6 को इस आशय के साथ रखना होगा मानो यही एकमात्र ऐसा उपबंध है जो इस अधिनियम के प्रारंभ की तारीख से विद्यमान था और पूर्ववर्ती उपबंध बिल्कुल भी नहीं था । इसका प्रभाव यह होगा कि वे सभी पदधारी, जो तारीख 1 सितम्बर, 2016 को पीठासीन अधिकारी का पद धारण किए हुए थे, इस उपबंध द्वारा शासित होंगे ।

16. जब हम मामले की परीक्षा उपर्युक्त परिप्रेक्ष्य में करते हैं तो यह प्रश्न विचारार्थ उद्भूत नहीं होता है कि यथासंशोधित धारा 6 को भूतलक्षी प्रभाव दिया जाना है अथवा नहीं । याचियों का यह निवेदन सही है कि उन व्यक्तियों को, जिन्होंने संशोधन से पूर्व पद छोड़ दिया है, इस संशोधन के अंतर्गत लाने की ईप्सा नहीं की गई है । यदि यह उपबंध भूतलक्षी होता तो इससे उन व्यक्तियों को भी इसका लाभ मिल जाता । किसी भी याची या किसी अन्य व्यक्ति द्वारा ऐसा कोई पक्षकथन नहीं किया गया है, केवल उन पदधारियों को, जो संशोधन की तारीख को सेवारत हैं, इसके अंतर्गत लाने की ईप्सा की गई है ।

17. **बाउचर पियरे आन्द्रे** (उपर्युक्त) वाले मामले में दिया गया

निर्णय, हालांकि एक भिन्न संदर्भ में, प्रस्तुत मुद्दे पर कुछ प्रकाश डालता है, जैसा कि उस मामले में के निम्नलिखित विचार-विमर्श से दृष्टव्य है :–

> "1. .... याची को 31 अक्तूबर, 1971 और 1 नवम्बर, 1971 के बीच की रात्रि को अशोक होटल, नई दिल्ली के राजस्थान एम्पोरियम में हुई चोरी के अपराध के संबंध में, 10 नवम्बर, 1971 को गिरफ्तार किया गया था । उसका विचारण अपर सेशन न्यायाधीश, दिल्ली द्वारा किया गया था और तारीख 16 जुलाई, 1973 के आदेश द्वारा उसे भारतीय दंड संहिता की धारा 380 के अधीन अपराध के लिए सिद्धदोष ठहराया गया था और चार वर्ष के कठोर कारावास और 10,000/- रुपए के जुर्माने से और जुर्माने का संदाय करने में व्यतिक्रम करने पर एक वर्ष के अतिरिक्त कठोर कारावास से दंडादिष्ट किया गया था । उसके द्वारा दिल्ली उच्च न्यायालय में फाइल की गई अपील असफल हो गई और उसकी दोषसिद्धि को पुष्ट कर दिया गया किन्तु कारावास संबंधी सारवान दंडादेश को कम करके दो वर्ष कर दिया गया था हालांकि जुर्माने को बढ़ाकर 15,000/- रुपए और व्यतिक्रम करने पर एक वर्ष का कठोर कारावास कर दिया गया था । अपील में उच्च न्यायालय द्वारा तारीख 5 अप्रैल, 1974 को आदेश पारित किया गया था । याची ने जुर्माने की रकम का संदाय नहीं किया था और इसलिए वह उच्च न्यायालय के आदेश के अधीन अधिकतम तीन वर्ष के कारावास का दंडादेश भुगतने के लिए दायी था । चूंकि याची उसके विरुद्ध मामले के अन्वेषण, जांच और विचारण के दौरान तारीख 10 नवम्बर, 1971 से लगातार निरोधाधीन था इसलिए याची ने यह दलील दी कि नई दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 428 के आधार पर, जो तारीख 1 अप्रैल, 1974 को प्रवृत्त हुई थी, तारीख 10 नवम्बर, 1971 से 16 जुलाई, 1973 तक की निरोध की अवधि उस पर अधिरोपित कारावास की अवधि के विरुद्ध मुजरा किए जाने योग्य थी और उसे शेष अवधि के लिए कारावास भुगतने की आवश्यकता है, जो कि, अच्छे व्यवहार के कारण अनुदत्त छूट को हिसाब में लेने के पश्चात् तारीख 12 अगस्त, 1974 को समाप्त हो गई है । याची ने यह दावा किया कि इसलिए वह 12 अगस्त, 1974 को

रिहा किए जाने का हकदार था और उस तारीख के पश्चात् उसे कारागार में निरुद्ध रखा जाना अवैध था । याची ने तारीख 12 अगस्त, 1974 के पश्चात् अपने निरोध की विधिमान्यता को चुनौती देते हुए दिल्ली उच्च न्यायालय में बन्दी-प्रत्यक्षीकरण की रिट के लिए आवेदन फाइल किया किन्तु उच्च न्यायालय ने यह मत अपनाया कि चूंकि सेशन न्यायालय द्वारा याची की दोषसिद्धि नई दंड प्रक्रिया संहिता के प्रवर्तन में आने से पूर्व की गई थी इसलिए धारा 428 उसे लागू नहीं होती थी और याची दोषसिद्धि की तारीख, अर्थात्, 16 जुलाई, 1973 से संगणित तीन वर्ष की पूरी अवधि के लिए कारावास भुगतने के लिए बाध्य था । चूंकि उच्च न्यायालय में फाइल किया गया बन्दी-प्रत्यक्षीकरण संबंधी आवेदन असफल हो गया था, इसलिए याची ने संविधान के अनुच्छेद 32 के अधीन प्रस्तुत रिट याचिका सीधे इस न्यायालय में फाइल की । इस रिट याचिका में भी उसी अनुतोष का दावा किया गया है और आधार भी वही था, अर्थात्, यह कि धारा 428 के आधार पर, याची पर अधिरोपित कारावास की अवधि तारीख 12 अगस्त, 1974 को समाप्त हो गई थी और उस तारीख के पश्चात् उसका निरोध विधि के प्रतिकूल था ।

2. इस याचिका में अवधारणार्थ उद्भूत होने वाले प्रश्न संकीर्ण हैं और यह धारा 428 के सही निर्वचन पर आधारित हैं । क्या यह धारा अपने लागू होने के प्रयोजनार्थ केवल उन्हीं मामलों तक सीमित है जहां किसी व्यक्ति को नई दंड प्रक्रिया संहिता के प्रवर्तन में आने के पश्चात् दोषसिद्ध किया जाता है या क्या इसके अंतर्गत वे मामले भी आते हैं जहां किसी व्यक्ति को इससे पूर्व दोषसिद्ध किया गया है किन्तु उसका दंडादेश उस तारीख को, जब नई दंड प्रक्रिया संहिता प्रवृत्त हुई थी, अभी भी चल रहा है ? याची केवल तभी इस धारा के फायदे का दावा करने का हकदार होगा यदि पश्चात्वर्ती निर्वचन को स्वीकार किया जाता है और इसलिए उसका समुचित अर्थान्वयन करना आवश्यक हो जाता है । धारा 428 निम्नलिखित रूप में है :–

"जहां अभियुक्त व्यक्ति दोषसिद्धि पर किसी अवधि के लिए कारावास से दंडादिष्ट किया गया है, वहां उसी मामले के अन्वेषण, जांच या विचारण के दौरान और ऐसी दोषसिद्धि की तारीख से पहले उसके द्वारा भोगे गए, यदि कोई हो, निरोध की अवधि का, ऐसी दोषसिद्धि पर उस पर अधिरोपित कारावास की अवधि के विरुद्ध मुजरा किया जाएगा और ऐसी दोषसिद्धि पर उस व्यक्ति का कारावास में जाने का दायित्व उस पर अधिरोपित कारावास की अवधि के शेष भाग तक, यदि कोई हो, निर्बन्धित किया जाएगा ।"

इस धारा में, इसकी भाषा के स्पष्ट स्वाभाविक अर्थान्वयन के आधार पर, इसके लागू किए जाने के लिए ऐसी तथ्यात्मक स्थिति रखी गई है, जो "जहां अभियुक्त व्यक्ति दोषसिद्धि पर किसी अवधि के लिए कारावास से दंडादिष्ट किया गया है" खंड द्वारा वर्णित है । इस खंड में ऐसी कोई बात नहीं है जिससे अभिव्यक्ततः या आवश्यक विवक्षा द्वारा यह संकेत मिलता हो कि दोषसिद्धि और दंडादेश नई दंड प्रक्रिया संहिता के प्रवर्तन में आने के पश्चात् होना चाहिए । इस खंड की भाषा तटस्थ है । इसमें ऐसे किसी विशेष समय के प्रतिनिर्देश नहीं किया गया है जब कि अभियुक्त व्यक्ति को दोषसिद्ध और दंडादिष्ट किया जाना चाहिए । इसमें मात्र एक ऐसी तथ्यात्मक स्थिति उपदर्शित की गई है जो कि इस धारा के लागू किए जाने की दृष्टि से अवश्य ही विद्यमान होनी चाहिए और इस तथ्यात्मक स्थिति का तब समान रूप से समाधान हो जाएगा चाहे किसी अभियुक्त व्यक्ति को नई दंड प्रक्रिया संहिता के प्रवर्तन में आने से पूर्व या उसके पश्चात् दोषसिद्ध और दंडादिष्ट किया गया है । उस दशा में भी, जहां किसी अभियुक्त व्यक्ति को नई दंड प्रक्रिया संहिता के प्रवर्तन में आने से पूर्व दोषसिद्ध किया गया है किन्तु उसका दंडादेश अभी चल रहा है, यह कहना अनुचित नहीं होगा कि "अभियुक्त व्यक्ति दोषसिद्धि पर किसी अवधि के लिए कारावास से दंडादिष्ट किया गया है" । अतः, जहां किसी अभियुक्त व्यक्ति को दोषसिद्ध किया गया है और वह उस तारीख को, जब नई दंड प्रक्रिया संहिता प्रवृत्त हुई, अपना दंडादेश भुगत रहा है वहां

धारा 428 लागू होगी और वह इस बात का दावा करने का हकदार होगा कि मामले के अन्वेषण, जांच या विचारण के दौरान उसके द्वारा भोगे गए निरोध की अवधि का उस पर अधिरोपित कारावास की अवधि के विरुद्ध मुजरा किया जाना चाहिए और उससे केवल शेष अवधि का कारावास भुगतने की अपेक्षा की जानी चाहिए । निस्संदेह, यदि दंडादेश की अवधि पहले ही समाप्त हो चुकी है, तो मुजरा किए जाने का प्रश्न उद्भूत नहीं होता है । यह धारा केवल तभी कारावास की अवधि को निर्बंधित करने के लिए प्रवर्तित हो सकती है जब दंडादेश अब भी चल रहा हो । धारा के इस अर्थान्वयन से उस सिद्धांत का अतिलंघन नहीं होता है जिसमें यह अपेक्षित है कि जब तक विधायी आशय स्पष्ट और बाध्यताकारी न हो, किसी कानून को भूतलक्षी रूप से प्रवर्तित नहीं किया जाना चाहिए । इस निर्वचन के आधार पर, इस धारा को कोई भूतलक्षी प्रभाव नहीं दिया गया है । इसमें अभियुक्त व्यक्ति के विरुद्ध पहले से अभिलिखित दोषसिद्धि की अवज्ञा करने की ईप्सा नहीं की गई है । दोषसिद्धि यथावत और अप्रभावित बनी रहती है और इसी प्रकार पहले से भुगता गया दंडादेश भी बना रहता है । दंडादेश को केवल वहां कम किया जाता है, जहां तक वह दंडादेश अभी भुगता जाना है । यह धारा उस दंडादेश पर भविष्यलक्षी रूप से प्रवर्तित होती है, जो अभी भी भोगा जाना है और उसे अभियुक्त व्यक्ति द्वारा मामले के अन्वेषण, जांच या विचारण के दौरान भोगे गए निरोध की अवधि का मुजरा करके कम किया गया है । अतः भूतलक्षी प्रवर्तन प्रदान करने के विरुद्ध किए गए आक्षेप पर आधारित कोई भी दलील सुसंगत नहीं है ।"

(जोर देने के लिए रेखांकन किया गया है)

18. हमारा मत भी संशोधन के उस तात्पर्य और उद्देश्य के अनुरूप है जो कि स्वयं संशोधन करते समय प्रतिबिंबित कर दिया गया था । धारा 6 में संशोधन करने का प्रयोजन संबंधित न्यायाधीशों की आयु में वृद्धि करके लंबित मामलों के भार को कम करना था । संशोधन से संबंधित लोक सभा संयुक्त समिति की रिपोर्ट में संशोधन की पृष्ठभूमि को निम्नलिखित रूप में उपवर्णित किया गया है :–

"विभिन्न ऋण वसूली अधिकरणों में लंबित मामलों के मुद्दे के संबंध में, वित्तीय सेवा विभाग द्वारा समिति को यह सूचित किया गया है कि ऋण वसूली अधिकरणों में लगभग 70,000 मामले लंबित हैं जिनमें पांच लाख करोड़ रुपए से अधिक राशि अंतर्वलित है । मामलों के लंबित होने के बारे में विभिन्न हितधारकों द्वारा दिए गए ज्ञापन में उल्लिखित कारणों में से एक कारण यह है कि विभिन्न ऋण वसूली अधिकरणों/ऋण वसूली अपील अधिकरणों में रिक्तियां हैं । हितधारकों द्वारा इस संबंध में अनेक सुझाव दिए गए हैं । समिति ने इस मुद्दे पर विस्तार से विचार-विमर्श करने के पश्चात् बैंकों और वित्तीय संस्थाओं को शोध्य ऋण वसूली अधिनियम के अधीन निम्नलिखित नया उपबंध अंतःस्थापित करने/कुछ उपबंधों को प्रतिस्थापित करने का विनिश्चय किया है ।....."

(जोर देने के लिए रेखांकन किया गया है)

19. इसी प्रकार, संशोधन से संबंधित उद्देश्यों और कारणों के कथन में अन्य बातों के साथ-साथ यह उल्लेख किया गया है :–

"बैंकों और वित्तीय संस्थाओं को शोध्य ऋण वसूली अधिनियम, 1993 और वित्तीय आस्तियों का प्रतिभूतिकरण और पुनर्गठन तथा प्रतिभूति हित का प्रवर्तन अधिनियम, 2002 बैंकों और वित्तीय संस्थाओं के उधारों की द्रुत वसूली करने के लिए अधिनियमित किए गए थे । इस समय ऋण वसूली अधिकरणों में लगभग सत्तर हजार मामले लंबित हैं । यद्यपि बैंकों और वित्तीय संस्थाओं को शोध्य ऋण वसूली अधिनियम में वसूली आवेदनों के निपटान के लिए 180 दिन की अवधि का उपबंध किया गया है तथापि, विभिन्न स्थगनों और लंबी सुनवाई के कारण मामले अनेक वर्ष से लंबित पड़े हैं । वसूली आवेदनों के द्रुत निपटान को सुकर बनाने की दृष्टि से उक्त अधिनियमों में संशोधन करने और भारतीय स्टांप अधिनियम, 1899 तथा निक्षेपागार अधिनियम, 1996 में भी पारिणामिक संशोधन करने का विनिश्चय किया गया है ।"

(जोर देने के लिए रेखांकन किया गया है)

20. विभिन्न ऋण वसूली अधिकरणों में बकाया मामलों को कम करने और लंबित मामलों से निपटने संबंधी उपर्युक्त उद्देश्य को पूरा करने की दृष्टि से इसका सप्रयोजन निर्वचन किया जाना है । **भारतीय रिज़र्व बैंक** (उपर्युक्त) वाले मामले में, न्यायालय ने इस सिद्धांत को निम्नलिखित रीति में स्पष्ट किया है :–

> "33. निर्वचन पाठ तथा संदर्भ पर आधारित होना चाहिए । ये निर्वचन के आधार स्तम्भ होते हैं । हम यह भी कह सकते हैं कि यदि पाठ तंतु है तो संदर्भ उसको रंग प्रदान करता है । दोनों में से किसी की उपेक्षा नहीं की जा सकती । दोनों ही महत्वपूर्ण हैं । वहीं निर्वचन सर्वोत्तम होता है जो कि पाठ का निर्वचन उसके संदर्भ के अनुरूप करता है । किसी कानून का तभी सर्वोत्तम निर्वचन होता है जब हमें यह पता होता है कि इसको क्यो अधिनियमित किया गया था । यह जानकारी होने पर कानून को पहले पूर्ण रूप से पढ़ा जाना चाहिए और तब एक-एक धारा को, एक-एक खंड को, एक-एक वाक्यांश को तथा एक-एक शब्द को पढ़ा जाना चाहिए । यदि कानून को उसके अधिनियमन के संदर्भ में कानून बनाने वाले की दृष्टि से, उसके संदर्भ, उसकी स्कीम के अनुसार पढ़ा जाए तो धारा, खंड, वाक्यांश तथा शब्दों के भिन्न भाव होंगे तथा वे भिन्न दिखाई देंगे, उस स्थिति की बनिस्बत जब कानून को संदर्भ के बिना पढ़ा जाता है । इस दृष्टि से हमें संपूर्ण अधिनियम को देखना चाहिए और यह पता लगाना चाहिए कि संपूर्ण अधिनियम की स्कीम में ठीक बैठने के लिए प्रत्येक धारा, प्रत्येक खंड, प्रत्येक वाक्यांश तथा प्रत्येक शब्द का क्या अर्थ है तथा वे क्या कहने के लिए रखे गए हैं । कानून के किसी भाग का तथा कानून के किसी शब्द का पृथक् रूप से अर्थान्वयन नहीं किया जा सकता । कानून का अर्थान्वयन इस प्रकार किया जाना होता है जिससे कि प्रत्येक शब्द का एक स्थान हो तथा प्रत्येक बात अपने-अपने स्थानों पर हो ।....."
>
> (जोर देने के लिए रेखांकन किया गया)

21. अतः हमारी राय यह है कि संसद् ने संशोधित उपबंध को असंशोधित उपबंध के स्थान पर रखने के आशय से उपर्युक्त संशोधन करते समय यह वांछा की थी कि इस उपबंध का फायदा उन व्यक्तियों को भी प्रदान किया जाए जो उस तारीख को, जब यह संशोधन प्रवर्तनीय हुआ, पीठासीन अधिकारियों के रूप में सेवा कर रहे हैं । यही न्यायसंगत, युक्तियुक्त और विवेकपूर्ण परिणाम प्रतीत होता है ।

22. यह निर्वचन संदर्भात्मक भी है, जैसा कि अधिनियम की संशोधित धारा 6 की नई अंतःस्थापित धारा 6क से परस्पर-तुलना करने पर देखा जा सकता है ।

> ".....पदासीन अधिकारियों और भविष्य में नियुक्त किए गए अधिकारियों के बीच स्पष्ट विभेद किया गया है । इसके विपरीत, पदासीन या भविष्य में नियुक्त किए जाने वाले अधिकारियों के बीच संशोधित धारा 6 को लागू करने के संबंध में विधायी रूप से कोई विभेद नहीं किया गया है ।"

23. हमारे इस दृष्टिकोण से विद्वान अपर महासालिसिटर की यह दलील असफल होती है कि यथा-संशोधित धारा 6 कोई अधिकार सृजित नहीं करती । यदि ऐसे निर्वचन को स्वीकार किया जाता है तो उन व्यक्तियों को भी, जिन्हें तारीख 1 सितम्बर, 2016 के पश्चात् पीठासीन अधिकारियों के रूप में नियुक्त किया गया है, 65 वर्ष की आयु तक सेवा में बने रहने के अधिकार से इनकार किया जा सकता है । **ग्लैक्सो-स्मिथकलाइन फार्मास्युटिकल्स लिमिटेड** (उपर्युक्त) वाला निर्णय, जिसका विद्वान अपर महासालिसिटर द्वारा अवलंब लिया गया था, लागू नहीं होगा । यह एक ऐसा मामला था जिसमें औद्योगिक विवाद अधिनियम, 1947 की धारा 2(थ) में संशोधन किया गया था जो कि तारीख 21 अगस्त, 1994 को प्रवर्तन में लाया गया था और न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया था कि वह भविष्यलक्षी प्रकृति का होगा । इसके अलावा, यह अभिनिर्धारित किया गया था कि वही उपबंध लागू होगा जो कि उस मामले में अपीलार्थी के पर्यवसान की तारीख को लागू होता था । स्पष्टतः, वर्तमान मामले को ऐसा मामला लागू नहीं होता है ।

24. तद्नुसार, रिट याचिका और इन याचियों द्वारा फाइल किए गए अंतरित मामले मंजूर किए जाते हैं और खर्चे के बारे में कोई आदेश नहीं किया जाता है । परिणामस्वरूप, उन याचियों को, जिनके पक्ष में अंतरिम रोक लगा दी गई है, सेवा में बने रहने के लिए अनुज्ञात किया जाएगा । 2019 की रिट याचिका (सिविल) सं. 732 में के याची को सेवा की निरंतरता और बीच की अवधि के वेतन सहित तत्काल सेवा में वापस ले लिया जाएगा ।

रिट याचिका और अंतरित मामले मंजूर किए गए ।

ग्रो.

[2019] 1 उम. नि. प. 353

शमीम (श्रीमती)

बनाम

राज्य (राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र, दिल्ली सरकार)

19 सितम्बर, 2018

न्यायमूर्ति रंजन गोगोई, न्यायमूर्ति नवीन सिन्हा और न्यायमूर्ति के. एम. जोसेफ

दंड संहिता 1860 (1860 का 45) – धारा 302, 307 और 34 – हत्या और हत्या का प्रयत्न – सामान्य आशय – अभियुक्त-अपीलार्थी और अन्य अभियुक्तों द्वारा पारिवारिक दुश्मनी के कारण मृतक व्यक्तियों की गोली मारकर हत्या किया जाना – अभियुक्त-अपीलार्थी को संदेह का फायदा देकर दोषमुक्त किया जाना – उच्च न्यायालय द्वारा दोषसिद्ध किया जाना – जहां स्वयं अभियुक्त की पुत्री ने अपनी माता के विरुद्ध साक्ष्य दिया जिसके लिए अत्यधिक नैतिक बल और साहस चाहिए और घटना में क्षतिग्रस्त साक्षी का साक्ष्य भी अभियुक्त के विरुद्ध हो तथा अभियुक्त के संस्वीकृति कथन की संपुष्टि अन्य साक्ष्य से हुई हो,